"यहीं वृन्दावन रज"

प्रकाशक आनद प्रकाशन कोटा

सरकरण 1995

मूल्य सत्तर रूपये मात्र

मुद्रक ज्योति ऑफसेट प्रिंटिग कोटा

आदरणीय अग्रज डॉ त्रिभुवन चतुर्वेदी के लिए सादर

नरेन्द्र चतुर्वेदी

आमुख

'यही वृन्दावन रज' नरेन्द्र नाथ चतुर्वेदी का उच्च कोटि का काव्य ग्रन्थ है जिसमे वे भौतिकता के स्तर से परे अध्यात्म की भूमि मे विचरण करते है। अध्यात्म–चिन्तन कवियो – दार्शनिको का प्रिय विषय रहा है कृष्ण और उनकी लीला–भूमि वृन्दावन कवियो के चिरन्तन सृजन का ऐसा तपोवन है जहा से अनहद नाद उठा है और अग–जग को मथुरा भक्ति मे डुबा गया है। सूर मीरा रसखान रत्नाकर से लगाकर नरेन्द्र चतुर्वेदी तक एक गहन धारा हमारी पावन भूमि मे प्रवाहित है। भौतिक आकर्षण मनोवेगो का नर्तन कवियो को क्षणाश के लिए आकर्षित करते हैं पर इनका अन्तिम अवसान अध्यात्म–भूमि म ही होता है। प्रसाद निराला महादेवी अज्ञेय और धर्मवीर भारती ने अपने–अपने ढग से अपनी–अपनी इयत्ता मे अध्यात्म काव्य धारा को परिपुष्ट किया है। समकालीन काव्य परिदृश्य मे नरेन्द्र चतुर्वेदी का योगदान न केवल विस्मयकारी है अपितु कृष्ण काव्य को नये आयाम भी प्रदान करता है।

काव्य–चिन्तन म परम्परा का परित्याग सभव नहीं है। नरेन्द्र चतुर्वेदी अपने अग्रज कवियो का पूत भाव से न केवल स्मरण करते है अपितु अध्यात्मपरक काव्य के नये क्षितिजो का विस्तार भी देते हैं। प्रारभ की कविताए वृदावन–रज की महिमा का गौरव–गान प्रस्तुत करती है मध्य मे अध्यात्म–चिन्तन का विषय–विस्तार होता है और अन्त म 'मन वृदावन' मे इसका सहज पर्यवसान हो जाता है। जिन बातो को कवि अमूर्त आकाश मे छिटकाता रहा था उसकी मूर्त अभिव्यक्ति 'मन वृदावन' म हो जाती है। वस्तुत प्रारम्भ की कतिपय कविताए प्रस्तावना मात्र हैं मध्य की कविताए प्रशान्त प्रवाह का रूप लेती है और अत म 'मन वृन्दावन' के महासागर म विलीन हो जाती है।

'यही वृदावन रज' की प्रथम कविता 'प्रार्थना' है जिसमे कवि परम्परागतता से हटकर आज की वास्तविकताओ को स्वीकारते हुए अपना पलायन निवेदन करता है। उसे आरती के साथ बतियाती भीड के विसवादी सोच पर ग्लानि होती है और वह आज के ध्यानियो की 'बाहर रखी पादुका' के ध्यान या नाम–जप के नाम पर किये जा रहे ढोग पर प्रहार करता है–

था ध्यान
बाहर रखी पादुका
x x x
और वह तुम्हारा वह अखण्डित नाम
मन की न जाने किस गुहा की
जम स्थली मे रह गया चुपचाप

– प्रार्थना

परम्परा को कवि इसलिए नकारता है कि आज वह निष्प्राण हो गई है और वह अपनी प्रेरक शक्ति खो चुकी है। साधना-मार्ग भी परम्पराओ-गलियारो म होकर आज भी जा रहे हैं। व्यक्ति की चेतना व सोच क स्तर म आज आकाश-पाताल का अन्तर दिखाइ देन लगा है। अत उसको साधना-माग को भी तदनुरूपता अपनाना चाहिए। बूढे शास्त्रो म तो 'वृद्ध चिन्तन' भरा पडा है। वे कभी प्रासगिक थे पर इस युग को देख-पहचान पाने की क्षमता उनमे नहीं है। इसलिए कवि 'बटुक' मे ही सार देखता है और उसी का अनुसरण करने को कहता है-

बटुक ही तो सार है
साथकता यात्रा की जो हुई है ज्ञात
ऋषियो से मुनियो और गुरुओ से
पर नहीं जाने क्यो
बटुक को छोडकर
वृद्ध का ही साथ रखते हैं सदा।

— मन वृदावन

और 'बटुक' को कवि इस प्रकार परिभाषित करता है -

जो जागा है वह बटुक है
जो बटुक है वह जगा है।

आलोच्य कवि का बटुक स्वामी रामेश्वरा श्रम जी हैं जो परम्परा से हटकर-साधक को 'वर्तमान' मे रहने की सीख देते है और उसे अतर्मुखी होन की प्ररणा देते हैं। उनके अनुसार साधक अतर्मुखी बनकर ही अपने गन्तव्य तक पहुच सकता है। अन्य साधना-पथ भटकाव-मात्र है। वे स्वय अनेक साधना-पथो पर गये हैं पर वे अपने गन्तव्य तक अतर्मुखी बनकर ही पहुच पाये हैं। उसी मे चिर शान्ति का निवास है। इसमे होना होता है और जागृत रहना होता है-

होना है होने की प्रतीक्षा रख
जगना है तुझको
होने की यात्रा है
बस फिर वहीं रहना है

— यह जो यात्रा है

यह साधक की अतयात्रा है जिसके लिए साधक को न घर छोडने की आवश्यकता है और न गेरुआ वस्त्र धारण करने की। स्वामी जी के उपन्यास 'अनन्त यात्रा' का नायक शिध्वज तो अपनी इस आध्यात्मिक यात्रा की परिणति कर्मक्षेत्र से अधिक सजगता एव तत्परता के साथ जुडने मे देखता

है। विवेक एव वैराग्य इस यात्रा की समाप्ति–पूर्व के प्रमुख पडाव हैं। ये साधक को पलायनवादी नहीं बनाते अपितु सद् गृहस्थ के कर्म–कौशल का बोध कराते हैं।

कवि का सोच परम्परा से हटकर है। उसका वृन्दावन यहीं है और उसके मुरली बजाते कान्ह भी यहीं हैं। उसका यह विश्वास जगत को पाप या मिथ्या (ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या) नहीं मानने देता वह जगत को कृष्ण की लीला–भूमि मानता है–

जगत यह पाप है अब नहीं
लीला भूमि है यह कान्ह की
जो बटुक है
वही तो मुक्त है।

– मन वृन्दावन

चतुर्वेदी की यह आध्यात्म–चेतना उसकी साधना–गत अनुभूति से प्रसूत लगती है। साधना के अनेक क्षणो मे वह उस भाव–भूमि पर पहुचा प्रतीत होता है जिसे परम्परागत शब्दावली मे 'समाधि' की सज्ञा दी जाती है। यह भाव–समाधि–क्षण–स्थायी और अवर्णनीय भले ही हो पर कवि जब परा से पश्यती और वैखरी पर आता है तथा सहसा कह उठता है–

इयत्ता छूटती निज की
बचा क्या हुआ क्या
कह सकोगी तुम सखी ललिता

– सुनो ललिता

यह इयत्ता अहजन्य होती है। व्यक्ति का अह उसे शेष सृष्टि से ही नहीं अपित कालिन्दी चिन्मय रास पीताम्बर आदि से पृथक किये हुए है उसके पार ये हैं –

अहम के पार ही तो है
श्यामल तट कालिन्दी
वहीं वह रज
जहा चिन्मय रास मे तुम हो खडी
और वह मेरा पीताम्बर
हृदय तट पर
हर देह पर है रखा

कवि अचानक प्राप्त अपनी इस भाव–समाधि को पहचानता है। यह वही भाव–समाधि है जिसमे गोपिया विभोर थीं जिसम चैतन्य का 'चिन्मय नृत्य होता था जिसमे कबीरा का खुमारी मे डूबा बेसुध मन जागता था और 'परा को वैखरी मे बाधता था–

कबीरा का वह बेसुध गान
जो खुमारी मे रहा था डूबता
जागता
सजगता में 'परा' का बैखरी पर बाधता

— मन वृंदावन

कवि उस अवस्था म पहुँचकर भाव–विभोर हो उठता है और अहर्निश हो रहे रास म डूब जाता है। वह अनुभव करता है कि नित्य नर्तन चिर स्पन्दन हो रहा है और केवल गति ही गति हैं।

कवि का यह कविता–सग्रह अलौकिक आनन्द नृत्य सगीत प्रेम दिव्यता अतीन्द्रिय अनुभूतियो का काव्य है। उसमे आनन्द की हिलोरे है सागर की गहराई है और हिमगिरी की भव्यता एव उच्चता है। वह अपनी दिव्य अनुभूतियो का क्षण व क्षणाश मे जीता है। तब उसक आनन्द का स्त्रोत सहसा फूट पडता है– बसत गा उठता है पक्षी चहचहा उठते है सूय गगन चाद आदि सभी तो गान एव बुदबुदान लगत है–

बसत का मधुर गान
चहकता पक्षी वह
हवा मलय पवत की
उजास चादनी की
सूर्य गगन चाद सभी
गाते बुदबुदाते से

— जब घुघरू बज उठे

'मन वृन्दावन' सग्रह की लम्बी कविता है जिसम कवि का काव्य–कौशल प्रखरता स अभिव्यक्त हुआ है। इसमे कवि उस महाशक्ति को 'मा' रूप देखता है। उसकी स्वरूप–कल्पना अत्यन्त भव्य एव सर्व शक्तिमती रूप म की गई है। 'हाथ बशी लिए वह कान्ह' उसका ढूढता है–

हाथ मे बशी लिए वह कान्ह
मा
ढूढता तुझको
जो सहारे कदम्ब के नीचे थी खडी
आरक्त पद नख से धरती को टिकाए

—मन वृन्दावन

और कवि तेजोमयी मा के स्नान का वर्णन करता है तथा उसे अत्यन्त दिव्य भव्य एव रहस्यात्मक बना देता है। उसे स्नान कराने के लिए सागर की उद्दाम लहरें उफनती हैं तब दिशाए स्तभित हो जाती हैं उसकी भुजाए दिशा के छोरो को छूती हैं–

और दिया था दृश्य यह
मा नहाती तुम
और सागर की उद्दाम लहरे
वक्ष को छू रही थीं
स्तभित दिशाए
उठती थीं भुजाए
इस आर स उस ओर तक
था दिया वह पथ
जहा से सृष्टि जगती और सोती
मा सिर्फ तुम वहा थीं

– मन वृन्दावन

कवि मा को ससीम से असीम बना देता है और उसकी अनन्यता को स्थापित करता है। कवि मा क सान्दर्य को इस प्रकार रेखाकित करता ह–

उसका लावण्य ही तो ह सौन्दर्य इस धरा पर
उसकी ही हसी
जो है मुदित गोल आकश म

– मन वृन्दावन

वही जल थल अग्नि पावक है और वह गति स्वरूपा है।

इस लम्बी कविता म कवि गणपति के स्वरूप की व्याख्या भी करता है। उनकी देह तो मनुष्य की है पर मस्तक एव नासिका गज की है। उनकी यह नासिका नाभि तक पहुच है। नाभि अतर्मन का निवास स्थल है और शीर्ष बहिर्मन का। गणेश का शिरोच्छेद बहिमन को नियत्रित करन की ओर सकेत है क्योकि शीश समस्त दुखो का सार है। बुद्धि के विकास ने चेतना के द्वार को कुठित कर रखा है। मानव जब तक बहिर्मन के वशीभूत रहता हे उसमे कामनाए– काम क्रोध लोभ आदि– पैदा होते हैं। वर्तमान मे रहने पर मन नीचे उतरता है। कठ हृदय (जहा मनुज का निवास स्थल है) स उतरता हुआ वह निमल बनता जाता है और नाभि पर आकर वह अतमन म विलीन हो जाता है। यह अवस्था एसी होती है जब साधक के प्रत्येक कार्य का सचालन अतर्मन से होने लगता है। इस अवस्था मे उसका प्रत्यक कर्म कत्तव्य बन जाता है और उसके साथ जुड सस्कार गत अच्छे बुरेपन का भाव लुप्त हो जाता है। तथा कर्म केवल कर्म होता है वह अच्छा या बुरा नहीं होता। गणपति की सूड (नासिका) का नाभि–स्पर्श और गज शिर प्रतीक रूप मे इसी विचार को समझाते हैं।

नरेन्द्र चतुर्वेदी ने अध्यात्म–विषय पर लेखनी चलाते समय अपने विशाल शब्द कोश का प्रचुर उपयोग किया है। प्रतीको बिम्बो लक्षणाओ मिथका आदि का उपयोग करके अपनी काव्य–समाधि मे कहीं भी शिथिलता परिलक्षित नहीं हाने दी है। व अनायास ही बैखरी से मध्यमा ओर अन्तत पश्मन्ती की अवस्था मे पहुच जाते हैं। 'मन वृन्दावन पश्यन्ती का मूर्तिमान स्वरूप है जहा हमारी गौरव–गरिमामयी काव्य–परम्परा एक न्ये अध्याय का सृजन करती है कृष्ण राधा ललिता नारद गणेश अपने प्रतीकत्व के साथ अपनी काव्यमयी भास्कर दीप्ति स जगमगा उठते हैं। यह कवि की महत्तम उपलब्धि मानी जायेगी।

'यहीं वृन्दावन रज का कवि कल्पना भावना एव चिन्तन का श्रेष्ठ उत्तराधिकारी है। उसका काव्य उदात्त भावा स परिपूण ह। वह पाठक को दिव्य लोक मे विचरण करने की प्ररणा प्रदान करता है। उसे रसखान की तरह 'वृन्दावन रज से अपार प्रेम है। उसने कान्ह के रास का रसास्वादन किया है उसन वटुक का दखा–समझा हे वट पत्र शायी विष्णु भगवान ओर उनकी लक्ष्मी रूपा आराधिका के दर्शन किये है और इस 'प्रसाद का पाठक को अत्यन्त पुनीत एव श्रद्धाभाव से वितरित किया है। म एस कवि का प्रशस्ति गान करता हू आर आशा करता हू कि ऐसी भाव–मजरिया हमे उत्तरात्तर प्राप्त होती रहगी।

वर्तमान में जब चलचित्रो के कुत्सित गीत अपनी स्थूली वासनाओ के घन–गर्जन मे लाक रूचि को दीक्षित कर रहे हैं तब राष्ट्रीय अस्मिता एव उसकी गरिमामयी काव्य–परम्परा का उद्‌बोधन एक विशिष्ट महत्त्व का अधिकारी है। सास्कतिक प्रदूषण के इस युग में जब उपभोक्ता–सस्कृति हमारे सिर पर सवार हाकर नग्न नृत्य कर रही है तब 'यहीं वृन्दावन रज का पवित्र एव आध्यात्मिक राग छडना कवि के सत्साहस का ज्वलत परिचय देता है मैं इस सग्रह की विधायक कल्पना का अभिनन्दन करता हू, जिसके आश्रय से कवि का अनुभूति–जगत जगमगा उठा है। इसीलिए एक भारतीय आत्मा ने वणु लो गूजे धरा' का नारा लगाया था।

अत मे मैं यह कहने का लोभ–सवरण नहीं कर सकता कि कवि के मुक्त छद मे उच्छल प्रवाह एव लयात्मकता है। उसके प्रतीक एव बिम्ब नवीनताओ और ताजगी लिये हुए है।

26 7 95

डा० कन्हैयालाल शर्मा
10 प्रोफेसर कालोनी
कोटा

क्रम

प्रार्थना

पालागन।
प्रभु   स्वीकार कर लो और अब
नैवेद्य कब का चुक गया
प्रार्थना जो थी सीखी
गुरुवा के चतुर्दिक धाम मे
आरती के साथ बतियाती भीड के
विसवादी सोच में ही रह गयी

था ध्यान
बाहर रखी पादुका मे
घर पर रखी अर्थ की अर्थहीन
स्वर्णमण्डित पिटिटका मे
और तुम्हारा यह अखण्डित नाम
मन की   जाने किस गुहा की
जपस्थली मे रह गया चुपचाप
न कुछ बोलता
और न बतियाता

प्रभु   पुजारी की रक्ताभ ग्रीवा पर
रखा वह स्वर्ण मण्डित हार
दृष्टि मे तुमको छीन   अनचहावीन
मुझसे मुझी को ले गया

सुना तुमने

जल अब कहीं भी नहीं है
था
जो पानी बर्फ और भाप की संज्ञा से संयुक्त
अर्थ अपना खो चुका

रूप
अरूप का ही भेद ही तो है
कह गया वह
मंत्र आराधक।
मटमैली बूँद से तिरती गुजरती रोशनी जो थी
हो चुकी वह क़ैद
कषाय वल्लरी में

नहीं दिखती कामना चहुँ ओर
हो सके यह बूंद ज्योतित
पा सके
निज की इयत्ता सारगर्भित
बूंद कुछ और
भीगी और गीली और भारी
कलुष की कामना में लिप्त
मदमाती गात करती निरर्थक हो रहे जल की
यह ही तो कह गया था वह
सुना तुमने

घाट का पत्थर

नाव
न जाने कितनी बार
मिली और रह गइ

पर मैं ठगा सा
घाट पर
सोचता बतियाता
बुनता रहा अपनी ही चादर
अपन ही ताने–बाने ले
कह गया था वह
जाती देखकर के नाव
इस घाट स उस पार तक

सार्थकता
नाव की
या देह की
सच पुण्य गधी
और वह
चादर को समेटे सहेजे
जिस्म सा घाट का पत्थर

हॉं, तुम

था मिला था वह
नीचे वृक्ष के
उस महकती शाम को
जब कह गया था वह
हॉं हो तुम्हीं
मेरी ममेतर
मात्र मेरी जन्मा जिसके लिए
मैं अकिंचन

थी वह भूल
जो कनेरों के झुरमुट मे दिखा
रूप का
गहरा सम्मोहन

मैं चला चलता रहा
गतव्य उतना ही बढता रहा
यह कैसा आकर्षण
पर अजानी शाम को
नीचे उस वृष के
जब हवा ने गुनगुनायी
नादवशी की महकती धुन
जिस्म के भीतर तरगित नदी थी वह
जो उठी प्रति भासित
पाकर तुम्हारा पन ।

वह वृक्ष

वृक्ष के भीतर छिपा था वह
हाँ
जब उकेरा उस तने को
वह और भीतर
और भीतर
जब शिराए भी दिखी
वह और भीतर
गर्भ धरती मे दिखा वह रूप
जो था अरूप
गध माटी की
और अपनी
दोनो समेटे
निज की अहता के मद मे चूर
कह गया वह
वृक्ष हूँ मै
मिट नहीं सकता
तुम्हारे काटने से
हर बीज मे है गर्भ मेरा
और मै सृष्टि की कामना मे हूँ खडा

नटी तुम

नटी तुम
नृत्य की कामना म
रत
रास की गरिमा
या नाद वेणु गीत
अपनी ही गति पर मुग्ध
कुछ सोचती कुछ बालती
कबसे वृन्दावनी गलियों हैं कह रही

क्या कहा था कान्ह ने
उस दिवस
जब वस्त्र थे टँगे उस वृक्ष पर
और तुम थीं लजाती
शील को अपने बचाती

सच कहो
शील था या था अह
जो कान्ह के
उस मधुरतम गीत को
जो शिराओ में रहा था गूँज
को टोकता
हा तभी तो
हा तभी तो कहा था तुमने
दै दो वस्त्र

यह देह वस्त्रों के बिना रह नहीं सकती
वस्त्र ही तो देह का है धर्म
नित बदलती वस्त्र
यह पुण्यगामी देह
अब वस्त्र ही ता है।

कविता वह

कविता वह
न कुछ सोचती न बोलती
छद को छोडती
और गति को ले साथ
मन के अजाने गहर को चीरती

कठ के नीचे मिले थे "शिव
कह रहे थे
शब्द को अब दे छोड
मात्र बहना
है नदी सा अब
धार हो क्षीण या क्षिप्र
या गति अलकनदा की
बस तुझे तो मात्र बहना है

और नीचे था
रखा वह घट स्वर्णिम
जिसका ढक्कना
स्वर्ण मडित और भारी
कापती कविता
छोडती शब्दावली का भार
चुपचाप
आ गई जब पार
देखो मात्र वह है ।

मात्र वह
डूबते सूरज की लालिमा थी
या गैरिक वसन की आग
हाँ वह मात्र थी
चुपचाप
छोड़ती भार शब्दों का अर्थों का
पार पश्यती
नहीं था कुछ
बस एक वह थी वह कविता

सुनो ललिता

सुनो ललिता
वह गान केवल मेरा और
तेरा है नही
कदब के नीच विछी जो रेणु है
उसन भी ·न्ना था गान

वह पूर्णिमा की रात
चद्रिमा की हर किरण ने था सुना
और अपने अतस मे था गुना
हवा
जो वणु रधो स हुयी मुखरित
वही तो इस धरा पर
हर दह म
जा बना है मात्र वशी तट
वही है बह रही

अहम के पार ही तो है
श्यामल तट कालिदी
वहीं वह रज
जहाँ चिन्मय रास मे तुम हो खडी
और यह मेरा पीताम्बर
ह्रदय तट पर
हर देह पर है रखा

बूँद जो है

बूँद का अपना ही होता धर्म
नहीं है क्षण
जो दे सके अर्थ   स्वाति   म
दे रूप विष का और मोती को
थी वह बूँद
ज्योतित और मटमैली

चली थी बादलों की गोद से
जाना और जाना
महासागर कोख म यह तो सुना था
पर बूँद का
यह जानना
यह बूँद है
और उसका कर्दम
मात्र उसका है
तभी तो क्षण
अचानक कौंधता है
नक्षत्र स्वाति अंत करण में हो उदित
शुभ्रता नग की अचानक सौंपता है

यह   अचानक
अनवरत यात्रा का प्रस्थान बिंदु
सचमुच अचानक कौंधता है ।

सुनो ललिता

हवा गुपचुप
गुनगुनाती
कुछ कह रही
और तुम
न कुछ सोचती न बोलती
बस मौन मुखरित
रक्ताभ महावर से सजाए पद
शुभ्रता मे लीन नूपुर
पद नख से कुरेदा वृक्ष धरती का
हॉ सचमुच लिखा था
नाम मेरा

मै
उस मौन मे जो हुआ स्वीकार्य
ले आकति अपनी
रग इद्रधनुषी से सजाए
छोडता पदचाप
रह रहकर उभरता नाद
नाभि हृदय कठ तक रोमाचित
सिहरता गान
इयत्ता छूटती निज की
बचा क्या हुआ क्या

वह क्षण

मैंने तो न जाना
और चाहा
वह आया
मैं तिनके सा उडा
और वह गया
बहता गया
वह थमा
मे रुका लौटता निज कोटर म पक्षी सा
फिर उडा और उड गया।

यह उडना और उडना
मात्र बहना
नीड पर थिर हो बैठना
सचमुच ही वरण है ?
हॉ जिया
क्या सचमुच जिया
पूछता था वृक्ष
ऑख पटटी पर रखे चहु ओर
जाता चाक के
इस सौदागर हाट मे
जो चलता रहा
अहर्निश चलता रहा।

था चुप
चुपचाप था बैठा
वह कीला धरती पर रखे सब कुछ
मौन म मुखरित
गडा हू मे
मै घुमाता अहर्निश चहुँ आर तुमको
जो कि तेरा है
गडा है पार अतस के
कालिदी के गहन तल मे

सुनो । ललिता
वेणु की वह धुन
वह नाद कान्हा का
या चिन्मयी रास का वह क्षण
जहा पार कीले के
है नहीं कुछ
जो सौपता
कापते थिर कमल दल पर
ओस बूँदो की ज्योतित रश्मिया का
अपार्थिव नृत्य मधुरतम
हाँ सचमुच हाँ
हुआ है सार्थक वही इक क्षण

इस रास मे

हाँ ललिता हाँ
बस नहीं हो सका वह नाच
जो था चिरतन
छोडता सबको उलीचता मन को
पर न जाने वह
छिपी जो कालिमा
रह-रह उभरती जा रही है
वह दश
नही वह दाव
वह जो रखा था रेत पर वह पाँव
वह छाव
रक्तबीज की राजना वह
फिर नया
फिर नया वह सब
पीठ पर आ पडा वह भार
जिसको छाडकर
वर्षों बाद आया आज

वह जो भार था
जो दिखा था पीठ पर कल तक
वह मात्र
था प्रतिफल कल का जो मिला था
बहुत गहरे बहुत गहरे
अन्तस दहलीज नीचे
वह अचानक आज
हवा
मिटटी
मौसम की अनुकूलता पाकर
फिर हुआ मुखरित
लदा अब पीठ पर

प्रार्थना प्रभु
थक गया मैं
लड नहीं सकता अपने आपसे अब और
जो दिखा रिपु था
मुडेरो पर
वह गया
पर अचानक चितना की कलम पाकर
रच गया भीतर
सहयात्री शत-शत ममेतर

नृत्य की बेला
लो अब जा रही
पक गए है केश
चेहरा पाषाण सा

कोपलो का गीत
जो सुना था पालने मे शिशु ने
प्रौढता की कालिमा ने
कर दिया मृतप्राय

सँचित लौहखड
कर्म की कालिया चादर
लपेटे चेतना कशकाय
लचर श्लथ पाँव
उठ नहीं पा रहे हैं हाथ

नृत्य की बेला सुहानी
बज रहे है नूपुर
थापे मृदगो की
गूँजती वशी अहर्निश देह यमुना तट

हॉ प्रभु हॉ
ताड दा कारा
जा रखा चटटान सी हिय द्वार पर
गह मरा
चारा ओर नीली झील बीच यह दुग
अभयारण्य म खाया
श्मशानी हवाआ का लिए
उसमे कद यह नृत्य
भार सादियो का कध पर रख
यह जा मरा है

छूटना है सव
यह गाद है
पर छूटना सचमुच कठिन

गह साच
और गहर और गहर
उतरती जा रही मुडेरों पर
डरावनी बिल्ली की आख यह

सहमा खरगोश यह
या मिट्ठू चित्रकूटी
वद पिजडे म टहलता
वस टहलता

नृत्य की वेला
ला गुपचुप आ रही
मच पर
सगीत मधुरिम

हाँ अचानक रग
बजे घुघरु
नाच मे है रत ये दो पाव
महावर मे नहाए
अधरो पर तुम्हारा नाम
गूँजता रह रह वशी नाद
यही है प्रार्थना
बजे घुघरु
तुम्हारे साथ
इस रास म ओ ! मेरे ममेतर
पा गया मे घर जो अपना
लौटता था
द्वार पर नृत्य मय सब
थिरकती अगुलियाँ

मधुरिमा मे डूबती सी गध
है क्या यह
पूछता था वह
जो चला आ साथ कब से
कह रहा
हर बार यह क्यो और वह
को चीहता हर बार

वह जो
रिपु अरि या अहेरी
छूटता मुझसे
जो था सगा
अन्तस मे रखे आधार
मधुरिमा म डूबती हुई गध

है क्या यह
पूछता था वह
जो चला या साथ कब से
कह रहा
हर बार यह क्या और वह
को वीहूनता हर बार

वह जो
रिपु अरि या अहेरी
छूटता मुझसे
जो था सगा
अन्तस मे रखे आधार

उसके छूटते ही
यह क्या
मात्र खालीपन
और फिर चदनी हवाओ का समवेत वह क्रम

नही था वह
जो कि जाना था
वह मुझे कुछ छोडता
कुछ खींचता
अजाने लोक मे
जो कि था अपना
पिघला बर्फ सा

वह आग
ठडी
जलाती राख करती
था नहीं धूप का कतरा

बस एक लौ
न कपकपाती न हिलती
थिर
उस आग स
पिघला वह नही था जल

हेम जल सा
वहा जाना
मात्र कुछ वह
उतरता सीढियो से
रेगते कोमल गात पर
कपनो की श्रृखला यह

उतरती जा रही
ओर गहरी
और गहरी
हृदय के पार
वहाँ था क्या
थिर कपित नई कोपल सा
अनुराग मय
नाभि पर टूटता वह व्यूह

छूटता सब कुछ
क्षण वह
वह पाया
था वहा वह
जो शरावा का देता वसुधी
हँसी उडते हस को
खिलती खिल–खिलाहट शारदीया चाँदनी
नहीं वह था बस वह जागी वसुधी

कि कदम जो थे पडे
क्रम मे
लिए भार आयु रूप का धन का
छोडकर गुरुता
जा उठे हैं
अब थाप ढोलक की मजीरे की

बस हो गए है छन्द
बह चले है
हो चले क्षर–क्षर रीत
अक्षर की निकटता चीहनते बस मौन

कदम्ब वन

कहती थी मीरा
पीर जो बढी है
नहीं कम हो सकती
सावलिया वैद को आना ही आना है

कहती थी वह कभी
चाकर वह उसकी है
आज कहने आइ थी
मोल वह ले आई
भरे बाजार से
ठोक पीट लाइ है
गोविंदा उसका हे
माल वह लाई है

भमर गीत गोपिका
वशी तट खडी खडी
कान्हा की प्रतीक्षा मे
कान्हा जो रस है
हेतु वह रस का है
रस ही आनद है
प्रेम वही
रस वही
वही अतिम आस है
कहता
रसखान था
व्रज की मुटठी रज पर
तन मन सौंपता था

रहीम रसखान
कहते नहीं पद

नहीं वे गायक थे
साथ वे कबीरा के
सबद सुनाते थे

भाषा जब मुडती है
उतरती बैखरी से
पद बधते जब घुघरु है
पार पश्यती वह
परा मे ढलती है

होता रसखान वहॉ
खान वह रस का है
रस ही श्रीकृष्ण है
वही वृन्दावन है

जायस से आया था
फकीर कवि कहता था
ससार है क्या यह
मुटठी भर राख बस
प्रेम की पीर लिए
बात बैकुठी करता था

प्रेम नहीं हिन्दू है
नही वह मुसलमा है

पाक होता जब अतस है
छूट जाती शरीयत है
तोडती रुह
बधन मारीफत हैं

मुहब्बत ही मुहब्बत
दीवार ढहती रकीबा की

इश्क के आलम मे
उतरता कान्हा है
भीतर वृन्दावन रज
नील कालिन्दी तट
पिघलता राम रोम
हेम वर्णी आग यह
नफस जो बाटता घर आगन है

रगना नहीं केश अब
कल की जो बात थी
कल ही के साथ थी

जो बीता वह कल था
कल साथ नहीं आना है
नही साथ जाना है

रहता वह यही साथ
डूबता जब मन
गहरी झील अतस मे
होती है सम झगडालू यह बुद्धि है

खुसरो तभी कहता था
रखनी ही पडती है
छाप तिलक माला सब
नैन जब मिलते हैं
वह चुपचाप उतर आता है
टूटता कटघरा
जहाँ घृणा बीज रहता है

मुहब्बत की चाँदनी
अमृत म नहाकर
जब फूल कालिंदी
केश यूँ बिखर
साथ राधारानी क
जब जल रा निकलनी ह
सच यहीं सच
गिरती दीवार ह
इन खडहर महलो की
जहाँ सियासत के काल पाव
मनुज और मनुज का
नफरत पढ़ात है
नही वह वृन्दावन
यह तमस वन ह

जाना है पार हमको
कहता यह वाहक था
घर खुदा स आया था
समता बीज लाया था
इन्सान क लहू मे नही भेद पाकर वह
बात इन्सान की
और इन्सानियत की
धरती पर लाया था

उसकी बात क्या सुनी
चले वो जिधर से
औलिया पीर चिश्ती वे
दरवेश की खोज मे
मुहब्बत की आँख से
जहाँ को बुलाते थे

जहाँ भी एक कतरा
मुहब्बत का बहता है
पाक वह दरिया है

सब वहीं कदंब वन
वही तट कालिंदी
सखी राधिका वहाँ
कान्हा का रास नित्य रचा रहता है

नफस की दीवारें जब
रह रह कर उठती हैं
वही पैदा करता है
नफरत की लहरों को
टूटता बिखरता नफस
मिलती रोशनी वह
सारे जहाँ को प्रकाश जहाँ मिलता है

नहीं वह रहता है
जो हम सबका है
हम मे ही रहकर
दूर हमसे वह रहता है

कहती है वेणुधुन
दूर नहीं गाँव वह
राधा या मीरा हो
या रसखान कबीरा हो
वहाँ रहते नित नृत्यमय
प्रेम की पजनिया ले
महारास के पथिक ये
लीलारत नित्य
सखा श्यामसुन्दर के
वृंदावन वासी
अतस मधुरिमा सग साथ नित्य रहते है

अनवरत वंशी धुन

अंधेरी यह यात्रा थी
नहीं था साथ कोई
थका हुआ क्लान्त
भटका यहाँ से वहाँ
तट भागीरथी सारे धाम तक

हिमालय नहीं दे पाया
कहीं भी विश्राम तक
भटका वह
फिर हुआ तले गहन वृक्ष
ध्यान मग्न
एकाग्रता
नहीं नहीं
था धुरी भव से दूर

नहीं था शब्द गुरु
गूँज बस गूँज
आती थी भीतर से
रह रह कर नाद नह
अनवरत वंशी धुन
ही नहीं
ज्यों सून सारे घण्ट नाद सभी

हाँ हाँ
क्षण क क्षणित हात जाना
तभी वहाँ उभरा था
नाक एक चॉट की
तीक्ष्ण विधती
इस छार स उस छोर तक
ठहरी वह दृष्टि
भीतर ही भीतर उतरती गहन गह्वर
नहीं वहा शप था

बैठा सुल्तान वह
बहुत गहरे   बहुत दूर
हसता इठलाता
बिल्लोरी आख लिए

चाह पुज घनीभूत
शासक नियता
दता प्रवाह को
हर पल नया रुप

राजा के पास जाना
और कुछ कह पाना
कठिन असाध्य था

बाहर का सरोवर
देता थपडे देह टूटती दीवार सी
खींचता अहनिश
गडती नोकाए
तज प्रवाह ले बाहर को

बाहर का आकर्षण
रह रह कर बुलाता वह
भूल नहीं पाती
नाव
बंधी इस घाट पर
नहीं नहीं अब जाना है
नाव ठगी सी खड़ी रही
जाता जो बाहर था
स्तंभित रह गया

डूबता नहीं वह
फिरकनी सा गति पर
जिसको भी साधा है
वह साथ चलता चला गया

उतरते ही घूमती
घूमती फिरकनी है
रह क्या घुमाता है
फिरकनी घुमाती है
घूमते ही गति से
वह और तेज बढ़ती है

जीवन जो जिस
फिरकनी ही साथ है
घेरा कौन गति
उस साथ घूमती है

बीच अतराल वह
क्षण के क्षणाश म
फिरकनी मे खो गया

गति कहाँ रुक पाती
वह तो प्रवाह था
आना भगीरथी को
नीचे उत्तराखड म
जाना गगासागर यही ता माग था

गति क्या उलटती है
पवन जा वधा
राम राम गता
साथ ले मनुआ को
लौटता प्रवाह वह
पुन महेश्वर को

अद्भुद ! सच अद्भुद !!
लौटता प्रवाह है
विषय डूबते कटे पडे अलग थलग
जुड नहीं मान
वल्लरी मतो घर मनुआ म
मनुआ दिगम्बरी
राह नहीं
थाह नहीं
वाहर कपाट वद
उतरती सीढिया
उतरता वह
गहरे कुड बीच गहर आलाक म

सम हुआ सागर यह
निश्चल एक रस था

नहीं रह पाती थिर
गति यह गति है
अगम अगोचर यह
लौटती पवन साथ

प्राण मन एक हो
बैठी त्रिपुटी में
भोले ये मित्र सो
शांत सजग आठों यह
जागती अहर्निश

नहीं यह थकती है
नहीं यह सोती है
मूर्छा तिरोहित हुयी
सजग यह रहती है

रहना है मात्र यहीं
जब तक नहीं गिरता है

प्राण का पीना पान
स्वर है जीवन का
गगन हवा पानी
फिर फिर हवा होता है

शब्द हुआ सबद

[illegible]
[illegible]
[illegible] वह, नहीं
[illegible]
[illegible]
मन्दिर में [illegible]
[illegible] पुजारी [illegible]
हाँ नहीं बस [illegible]
वहीं सारा [illegible]
भीड़ ही भीड़
[illegible] जन-जन [illegible]
खण्डता सिपाही वहाँ
क्या बाहर अनुपस्थित था

यह उठा [illegible] भक्त
वहाँ नहीं यह रहता
वह बुतखाना है
वह उसकी कामना में
लिए हाथ हथौड़ा वह
हर बुत को
तराशता मन ही मन
दूर बहुत दूर
कहीं और सिर झुकाता है

कहता [illegible] याज्ञिक
स्वाहा ही स्वाहा
यह यज्ञ में
होता प्रस्ताता और उद्गाता है
यह जो धुआं उठता है
सुवासित हो

नहीं होता व्यर्थ यह
शब्द
यह निरंतर गूंजता है
पिता यह यीशु का
प्रार्थना में रहता है

बंधे हाथ
खुले हाथ
झुके हाथ
चारों दिशाओं में सजदा ही सजदा है

जैसा जब सोचा है
यह वैसा ही होता है
धरती के कण-कण पर
मनुज नाम धारी यह
अपने से अलग
उसे नहीं पाता है

हाँ जब मन घटता है
यह बाहर की यात्रा से
भीतर उतरता है
सब मन पाता है
सूर्य प्रभा पर मन्दिर
अनहद की नदी
तट कालिंदी
हाँ नहीं बाधा [illegible]
गरल लिए कंठ पर

नहीं यह [illegible]
[illegible] है
[illegible]-[illegible]

यहाँ वह उसका
मात्र वाहक होता ह

कहती थी मीरा
नाची थी कभी यहाँ
वहीं उसका साँवरा
उसका पति होता है

योगी का महश्वर वह
याज्ञिक का प्रभु
परम निर्वाण वह
वही अस्तित्व कूटस्थ
उसको जब जब यह
अनुभव म पाता है

छूटता है सब यहाँ
उभरता निनाद नाद
ताँडव
नहीं नहीं नटराज प्रलयगान

टूटता जाता सब
रहता शेष वह
अतस उजास मय
तब पिघलता माम वह
खड खड क्षरित
खडा युगो का शैतान वह
हिम सा पिघलता है
शेष सदा कोमल वह
आया रात जागा नन्हा देव शिशु अब

धरती वही
मघ वही

सूरज वही
चाँद वही
आस की होलिका धू-धू कर जल गई
यहीं आग ठंडी पड़
साना ही साना
नम या जगत अम्बर
गगन पवन
साथी ले स्वाति की एक बूँद अमृत का

वस्त्रहीन दिगम्बर
चलना धवल बहती सहस्त्रधारा सी
रोम रोम समर्पित
महाभाव मंडित
यहाँ वहाँ सब जगह
दसों दिशाओं में गूंजता नाम वह
शब्द बन सबद
वह तानपूरा सी
यश अहर्निश रखा [illegible]

यह जो यात्रा है

छोड नहीं पाया वह
चाहा था जिसको
आकर वह आकर
दुख दिये जाता है

जब तक हँसा खिला
खिलखिलाहट कवल की
पर उसके हटते ही
गहरा सरोवर वह
नील व्यथा लहरो सहित
तन मन कगार तोड
अटटहास करता है

नही यह जाता है
आता है
यूँ ही
पत्ते सा मन उड जाता है

लौटता नहीं वह
यूँ ही बुलाने से
जब भी आता है
कुछ नया ऋण
नया ब्याज
साथ ले जाता है

कहता था बटुक मित्र
सही पथ साथ मिला
असत पगडडी स
खडा दूर एकटक
जो हुआ
हो गया
होना है होने की प्रतीक्षा रख

जगना है तुझको
हाने की यात्रा है
बस फिर यहीं रहना है

रहता है बटुक यहीं
भीतर जब उगता हे
उसके इगित पर
मोह माया रुप छोड
मॉ की सहज कृपा
साथ लिए शिशु को घर चल पडती है

यहीं वृन्दावन रज

नहीं होना देव
नहीं असुर होना है

सागर मथन यह
सागर तट
देव खड़े दनुज खड़े
साथ यह पुतला नमक का है

सागर तट यह
अमृत घट रखा
मचलती सेना है

एक वह ले जाता
खींचता बाहर है
बाहर कल्पवृक्ष
पारस का आकर्षण
अमृत सरोवर की चकाचौंध साथ लिए
खींचता
अहर्निश सागर निमत्रण है

हाँ
गहरी और गहरी
कमल नाल
सुरग बनी
नहीं वहाँ शेष कुछ
छूटता सब वहाँ
बिखरता कण कण है

कहती पारस गध
भाग चल

दूर कहीं
जिसे नहीं जाना है
वहाँ क्यो जाना है

यहाँ से वहाँ तक
धरा स क्षितिज तब
लाभ माह आकर्षित
जन का यह प्रबल वेग
क्या सचमुच ही व्यर्थ है

पाना सुख
और गहरे सुख को
लौट चल बाहर को
साथ तेरे चचला
रथ सुसज्जित है
निशा निमत्रण यह
मधुर मिलन यामिनी है

हाँ यही
वहीं मिला बटुक वहीं
नन्हा सा बालक
आधी रात बोला था

छूटते सभी वसन
ओर कषाय वल्लरी झरी
रुके मेघ तितर–बितर
वह कवल जगता है

इधर पथ उसका है
अगम अगोचर है

जब तक सुख शेष रहा
सौंपता वह दुख है
अविचार बना आमत्रण
पग बार बार फिसलना है

विचार यहाँ जागरण
नन्हे बटुक का है
दीपोत्सव रगोली फागुनी हवाए
खिलत कवल की देती सूचना ह

बैखरी के घुघरू
बजे जब ढोलक पर
छाडते पद आहट
ढलते मध्यमा बीच
उरतते पार पश्यती
चाहते उतरना परा महासागर

छोटा सा शिशु वह
केल पत्र लेटा
पद अगुष्ठ अधर बीच
महासागर तिरता है

थमता है गहन शोर
पवन चाल मद
भगता जो यहाँ वहाँ
तीन लाक चाहत लिए
रुकता अचानक
लौटता घर को
द्वार खुले दोनो बिछुडे जो कब स

गगु नहीं तिमिर नहीं
सहस्त्र दीप जलत है

निधूम दीप शिखा वह
हॉ यहॉ हॉ वहीं
वृन्दावन रहता है

यज्ञ गायत्री वहॉ
विषय वन समिधा
धू-धू कर जलत ह
गो सग श्री कृष्ण
प्रवाह भीतर उतरता ह

लाटती गगा
हिमालय कभी सुना नही

पर वाह रे भगीरथ
साथ लिए महश्वर
जटा जूट धारी वह
गरल कठ रखे हुए
साथ त्रिशूल रखा
धम नदी साथ
गण गणपति साथ आता है

शरीर मनुज दह
नासिका गज की
नाभि स्पर्श कर
वही बठ कमल नाल ब्रह्मा अवलोकित है

यही वह हिमालय
घर भागीरथी अलकनदा का
बहती ह गगा
सग कालिदी साथ लिए

लुप्त सरस्वती
शात जटा जूट मध्य–चद्रमा बिराजत हे

बाहर हुआ घमासान
कठ तक गरल रखा
उगलता फन हे
रह रह मचलता
साथ रहा शेष नाग
मुख मुस्कान लिए
भीतर का प्रवाह
सगम प्रवाहित कर
पुण्य स्नान ध्यान
देह पर उतरता है

हाँ यहीं हाँ यही
यमुना तट दिखता है
खडे हैं धनु सग
अधर बाँसुरी सजी
गोपिका बनी वह
ललिता तो सग चली

हाँ यहीं यहीं यहाँ
वृन्दावन रहता है
यहीं वृद्ध व्यास पुत्र
विवेक वैराग्य जग
भक्ति यहीं पर भागवत सुनती है

बहा सके दूर तक
ले जा सके बाहर तक
फेन पट शात है

हो घुरा प्रलय शात
वायु सहज

जल हुआ थिर है
प्रवाह पारदर्शी
बिल्लारी कॉच सा चमकता है

दपण चित्र हुआ
सहज वह
उभरकर मन प्राण विचरता है

हाना है
बटुक यहीं
यहीं वृन्दावन तट
यहीं पवित्र गगा
अतस भिगाती है

रहता है शप वह
रहता है सम्मुख गह
नमक का पुतला अव
पान थाह सागर की
अतस की अरुणाइ दूर दूर मुग्धित हा

सुरसा विकराल मुख
पार किया कल था
नन्हा बटुक यह
हृदय कवल खिला खिला
नया जन्म आज मिला
कल पत्र लेटा वह
देह प्रम अधर रास
महासागर अगाध बीच तत्क्षण चल पडता है।

जब घुघरू बज उठे

यह बहुत भटकाता है
और वह सम्मुख नहीं आता है
मे बीज चने सा
खत पर खत नया दता चला जाता है

उसका क्या जाना
वह नित नूतन हा जाता है
कहता चुपचाप
देख आइना कभी
तू भी रहा कहाँ वही

नन्हा सा तू
अब बलिष्ठ नजर आता है

जा भी किया सुबह शाम
दह वृक्ष बढता चला जाता है
और वह ओझल हुआ
पार मन–प्राण
कभी–कभी आता वह
क्षितिज पार अनायास
अतस कहीं और छार
आने की आहट
यूँ ही छोड जाता है

नहीं होता पालागन
उसस भी अनायास
यहीं माँग उठती है
यह मिला और मिले
कोइ आकर के कानो म
उसके न होने की खबर द जाता है

कभी कभी होता हे
यह खोता है आकपण
ओझल सा होता है
रस खींचता हे भीतर तव
द्वार चरमर चरमर
खुलन को हाता है
बन्द रहा सदिया स
किला अभयारण्य म

बाहर का पथ
हा जाता रग हीन
रस भीतर उमडता है
मे होता उपस्थित
हर क्षण सजग वहा
यह बना वह
वह यह हो जाता है

क्षण के क्षणाश मे
क्षण जग उठता है

बसत का मधुर गान
चहकता पक्षी वह
हवा मलय पर्वत की
उजास चॉदनी सी
सूर्य गगन चॉद सभी
गाते बुदबुदाते से

दरवश हुआ क्या अव
आलम बदला सा
नदी वही पवत वही वही देह वही सव
दिखता कुछ और अव

सिलसिला कुछ टूटा सा कहीं कुछ जुड़ता
उड़ता बनजारी
बैठे झील किनारे जा
गा चाँदनी म नाची चम सारस नी
भिगाती शुभ ज्यारासा
मन प्राण प्यासा वातायन का

भीतर का बाहर अब
बाहर जा भीतर का
डूबते सूरज का
आह लालिमा यह
नस नस आपूरित अब

गंध वही
रंग वही
छुअन स्पंदित
लहरों म तिरता सा एक पुष्प कमल अब
खिला नहीं
खिन्न का प्रकाश रस पीने का

थरथर थरथर
वह कपाट हिलता ह
घुघरु बज उठते है
शासक महारानी वह
चल तन भटकी थी
राज पाट तेरा
यहां वहां जगत बाच

छोड शारिका पंख वहीं
अब गाता
गुनगुनाती
नि । रम सिरजन दुनिया सा रहती ह

सागर पार वह

परत दर परत
जा कुछ भी पाया हे
वही मोम पिड
हर साचे म आया हे

पिघलता खड यह
जैसा भी सोच है
रग रुप लेता है
  वाक   सग हाता हे

चलता है
भगता हे
लडता है
फिर फिर पिघलता है
नया रूप लता हे

कहता है
सूत्रधार
रगमच मरा हे
जा कुछ भी करना ह
मत्र यद्व हाना ह
सखी यह साथ रही
कतर ब्यात करती ह
हर पल सजग रही

मनुआ का धकलतो
अच्छा हा ुरा हा
अथ वही दता ह

नही वह सेविका
वह तो शासक महारानी
इधर से उधर
तिनक सा उड़ाती है

दह शिशु वृद्ध बनी
वह चिर यावन
नहीं नहीं वह सुरसा
रक्त बीज जनती है

यही वही कहती है
यहाँ वहाँ चलना है
थिर नही हो सकता
मनुआ सदा नचता है

दती रही आमत्रण
सग परिवार लिए
काम क्राध लाभ मोह
तथागत की चिन्हित
तृष्णा साथ रहती है

छूट नही पाता यह
तेज हवा चलती है
साथ लिए उड़ती है
नारद सा मन हुआ
एक लोटे पानी पर
ससार नया पाता है

हाँ यहीं यहीं वह
तत्क्षण वह घटता है

खुलता है सुरसा द्वार
लघु हनुमान वह
सीता की खोज म
पार सागर
तट लका पर
चुपचाप पार जाता है।

यह जो

कहते रहे कब से वह
हटना ही होगा अब

जो कुछ भी जाना है
शीश पर बोझ यह
कब से साथ आया है

कल साथ भगवा था
माथे पर बधा वस्त्र
कमर कस
हाथ मे शास्त्रकी गहरी रेखा थ

यहाँ वहाँ
सब जगह
श्रेय गाथा लिखी रही
जगह जगह बुत बने
बुत से आखर रहे
जो कुछ भी हाथ मिला
फूल कंकर साथ रहा

कहता अहर्निश वह
सच सच देख यह
पारस नहीं है यह
लोह पिंड पाया है

जैसा कुछ सोचा था
वही तो पाना था
और वही आज पाया है

पाना ही साचा था
नहीं साच पाए कुछ

पार इस सोच के
कभी कही जाना है

बोझ लदा सदियो से
भारी पीठ लदी लदी
चेहरा पुता
वस्त्र रगा
नाटक की सूचना देता रहता अतस है

परदे मे रखा सब
आईना कहता है
जो कुछ भी जाना है
नही वह जाना है
पार सोच के जब
होना यहाँ होता है
और वही रहते ही
दिखता सब सही सही
वह ज्ञात होते ही
फिर कहीं नहीं जाना है।

यह जो जाना है

प्याज की तरह था वह
परत दर परत
कहता रहा सब कोई
यही यह जाना है

जब जब भी जाना
अडा रहा बुत सा
यही तो सच है
परत दर परत
खुलता रहा
उघडता रहा
जो भी जाना
नहीं चला साथ यह

कैसी है यात्रा
सफा दर सफा
बढती किताब है
जो कुछ पाया था
नहीं चला साथ वह
चुपचाप चला गया

प्याज सा जीवन यह
सार क्या
पता नहीं
उतरते छिलको की कैसी है यात्रा

उतरते उतरते
जब भी नहीं रहता कुछ
जो कुछ भी शेष रहा
होता अशेष वह
तभी अज्ञेय वह
ज्ञेय रह जाता है

जो कुछ भी सोचा
वही तो हुआ

कहता था कल्पवृक्ष
छाया मे आए हो
जो भी भीतर है
वहीं तो मै हूँ

और सब जगह
जो भी चाहा है
वही तो लाता हूँ

अधूरी प्यास रही
जल ही चाहा है
जल चाहे खारा हो
प्यासा तो प्यासा है

कैसी यह प्यास
मिटाए नहीं मिटती है
जल यहाँ कितना है
अगुलियाँ थकती नहीं
हाथ की लकीरे
कभी गुलाब क्यारी से निकली थी
वार्धक्य हवा लिए
रही प्यासी ही प्यासी हैं

कितना भी भरे जाओ
घट रीता है   प्यासा है

वाक्य हुआ जीवन
विराम नहीं जाना है
छन्दशास्त्र

भाषा ज्ञान
इसका अनूठा है
सब कुछ यहाँ न्यायोचित
नहीं कुछ छूटा है
माँग अनवरत बढ़ी
देता है कल्पवृक्ष

जो कुछ भी पाया है
जो कुछ भी जाना है
खंड खंड पाया है
खेल साँप सीढ़ी का
जितना भी चढ़ना है
उतरना अधिक यहाँ
हाँ वापिस लौट लौट
फिर वहीं शुरू होना है।

जगता बटुक वह

हाँ वही था
अखड लौ उसकी
नहीं वहाँ पवन
प्रज्वलित धूप शिखा वह

न कपती
न कपाती
थिर अपलक
हाँ वहीं वह सचमुच

लौटता पवन वह टकराता ब्रह्मनाल
दिखा वहीं अचानक
काटि सूय प्रभामय
छूटता सरोवर अध

एक रेख प्रभामय
न कपती न कपाती
सीधी सरल रेखा

तभी खिलखिलाहट
हसता बाल शिशु वह
सिहरन का पुज वह
अचानक वह जन्मा है

न माँ जन्म देती
न पिता वहाँ होत
जन्मता जब वह
अधकार हटता
अधेरी रात मे
नन्हा शिशु जगता
पूछता कहीं कोई
नाम कहीं उसका

ज्ञान की पुटलिया वह
बस्ती मे खो गई
बिखरता रग वहाँ
कल धमाल खेला था
हवा बाँध पैंजनियाँ
जली हालिका वह
शात आग जन्मी थी
"जरूथस्त्र कहता था
ठडी आग तेरी है

जो कुछ भी लाया था
सचमुच वह कदम था
जल उठा धू-धू कर
वहीं वह जन्मा था
नव शिशु बिन माँ का

पूछता न नाम कहीं
नहीं कोई आहट
नहीं कोई लहर उठी

एक वह तारा था
अचानक ही जन्मा वह
सूय चन्द्र मुदित हुए
वहीं तो उतरा वह
खिलता खिलखिलाता बाँटता रस रग
भ्रुकुटितीर बोला वह

हाँ यहीं
हाँ यहीं गोरख अकेला था—

कहता था वृक्ष वह

नहीं छाडा कुछ भी
यही तो होना था

कहता था वृक्ष वह
हॉ ऋतु अपनी थी
शाखाऐ लदीं ढकीं हरे नए पत्तो से

कहता समीर
सच यहॉं सगीत बहता है

ओरे शिशिर कब आए तुम यहॉं
ठिठुरन ही ठिठुरन
सहमी डालियॉं
बोझ रखे पत्तो का

ओरे बसत
पतझड के साथी तुम
ले आए पीत वस्त्र
रह रह कर उडते हैं

छोड गए तृण विहीन
शेष रही डालियॉं
रसहीन गुप-चुप
छोडा नहीं कुछ
स्वत ही हो गया
रस सिक्त अतस मे

खडा यह वृक्ष
छूटता सब कुछ
बाहर से लौटता
भीतर दरवाजे पर
आज यूॅं ही ठहर गया

छूटता सब कुछ
बाहर से लौटता
भीतर दरवाजे पर
आज यूँ ही ठहर गया

क्या नहीं होता वहाँ
न जाना
न सुना
कहता था वह
वहाँ मात्र भार है

हाँ मात्र जगना है
नहीं वहाँ अधकार
न तमस की काली रात
जहाँ सब जागे है

चाहत
लहरे ही लहरे है
उस महासागर की
रहता जो भीतर
साथी अनत यात्रा का
उलीचता लहरो का
आती हैं लहरे
गिरती है
उठती है
तट से टकराकर
उर्जा अभिताभ की
बादल बन बरसती है

सागर
निरतर देता थपेडे यह
अतस प्राचीर
मूक गवाह बनी

नहीं हो पाता वह
दता जो नया जन्म

टूट पाए वह
बिखर जाए कण कण वह

जितना भी बिखरा वह
रक्त बीज जन्मा वह
नया नया जन्म ले
उठ खड़ा होता है

कहता वह दिगम्बर
सदियों से गंगातट
संभव है यहीं पर
भुन सके बीज वह
फिर कितना भी जल गिरे
नहीं होगा खेल यहाँ

पर क्या हो पाता यह
जप तप योग ध्यान
अहंता की वल्गा ले
भैरव अश्व उड़ा
त्याग बना योग यहाँ

श्रेय की गाथा यह
सदियों से कह रही

हो सकता संभव
क्षण सहज ढल जाए कभी
मात्र वहीं रहना हो
क्रिया मात्र दर्शन हो
और वह चितेरा
गढ़ता कुछ और कहीं

मात्र चुप बैठा हो
सग किया रहता हो

रहनि   वहीं रहना है
करना न करना है
हाना वस होना है
तभी वहाँ रहना है
और जहाँ रहना है
वहाँ वहीं होना है
जो वहाँ होना है

घर जो अपना है

लौटना है घर को
यही अब जाना है

जो कल गया
वह भी अपना था
चाहा रोकना
पर क्या वह रुक पाया

यूँ ही छोड़ बीच
चुपचाप चला गया

पत्ता हुआ पीला अब
पता भी चला नहीं
क्षणिक सी हवा चली
यूँ ही वह उड़ गया
धूल धूसरित सब
यही वह क्रम था

आना है उसको
देखना घड़ी घड़ी
कहती दीवार घड़ी
उसको तो आना है
रोक सकता नहीं
क्षण
उस क्षण को
कहती पद चाप है
वह तो अब आना है

तिरता है तिनके सा
अस्तित्व
गहरी झील व्यथा बीच
इधर से उधर
क्या मात्र उसे बहना है

क्षण जो जिया
कटा दोनो किनारो से
हॉ वहीं बीच
सच बहती नदी है

रहना वहीं है
बीच
जीवन सरिता मे
गया
याद रहा
आना
प्रतीक्षा है
जिया क्या जिया
नहीं शब्द सेतु है
वही बस यहीं
रहना वहीं है

वही वह घटता है
दौडता वह
तेज गति
प्रवाह ही प्रवाह
यहॉं वहॉं
निमिष मे ब्रह्माड दौड

वही जब क्षण भर
क्षण से क्षणिक
उस खड वर्तमान मे
क्षणाश मे
ले तेज गति
उद्दाम पर नियत्रित वह
चुपचाप रुख बदलता है

जगता है
चिति पुरुष
शेषनाग करवट ले
कमलनाल बैठ यह
खोलते द्वार हैं

घर जो उपेक्षित था
विस्मृत था सदियों से
दरवाजा खुलता है

बंद कपाट थे
नाद बज उठता है
रह रह कर आवाजें
अनवरत
भीतर के कक्ष गवाक्ष खुल उठते हैं

क्या हुआ अचानक यह
ध्वजा नील लहरों पर
ज्योतित
प्रभामय अभिताभ जग उठता है

बिखरी है
रोशनी यहाँ वहाँ सब जगह
घंटे घड़ियाल
रह रह कर बजते हैं

घर का दरवाजा
अचानक आज क्या खुला
मौसम का मिजाज भी बदला सा लगता है ।

यात्रा सन्दर्भ

नहीं देता बाहर काइ
औषध इस रोग की

दहकता अग्नि कुड है
जलते रक्त कण
करुणा ममता
और उदारता की वदी है
उठती है लौ
अहकार और शोपण की

हाना है पार
इस दरिया से सबको ही

टूटी हे नाव
पतवार भी नहीं है अब
माँझी खामोश
भूल गया पथ है
वह भी अब विस्मृत
तैरा था कभी
युगो म लिखा है कहीं
साथ लिए ताड पत्र
सचित पुरा कथा
साथ साथ चल रहा

तभी आया व्यापारी
साथ लिए सुविधाएँ
दे रहा निरतर
ले लो जी भरकर
यही है उपाय
धधकती आग का
दमन नहीं
पूरक है तुम्हारी चाह का

पर हुआ अचानक
आग और बढ गई
जितना भी रोका
उतनी ही बढ गई

बाहर का जो कुछ
श्रेय लगा
प्रिय लगा
नहीं देता वह कुछ
जो हटा सके दुख को

गहरी नदी है
नीली लहरो पर तिरती व्यथा है
चमकता है चद्रमा
लहरो के बीच
लुकता-छिपता है
बहती हवा है
नहीं है उपाय कोई

नहीं है सहारा कहीं
दे सके अमृत
या पारस मिल पाए
या कहीं कल्प वृक्ष

बाहर
सन्नाटा है
आँखे बन्द हैं
रज्जु मे सर्प अहर्निश नजर आता है

जगना है तुमको
जगना ही सार है

बाहर जो कुछ है
नही दे सकता वह
कम कर सके जो
व्यथा भार को

ढोना है
जब तक कन्धो पर भार है
और नहीं लेना है
यही यह सार है

बाहर की रस्सी
लोहा या सोना हो
अमर बेल
जीर्ण–शीर्ण
कटी पटी
रक्त बीज जन्मा यह
गिरती है
मिटती है
फिर नयी बनती है
मिटकर के बनना
और नया होना
अध नियतित का यहीं एक सार है।

साक्षी है समय

इस बार होलिका
क्या यह जली
जल गया सब कुछ
साथ जो सहेजा था

धर्म था उसका
जलना जलाना
साक्षी समय है
जो भी यहाँ जला है
वह स्वय जान पाता नहीं
आग कब उठती है
कठ पर आकर धधकती वह
अरणी मस्तिष्क बन
आहुति रक्त–मज्जा की

लौ जब उठती है
भगवा होता नहीं वस्त्र
देह हो जाती है
जल उठती वह आँच
ढूँढती फिरती थी जा
परिजन सनेही और [illegible]

वाक
सिमटती [illegible]
धधका है [illegible]
स्वाहा [illegible]

न आग न धुवा
कौंधियाती आँख
शेष रहे अंगार
पत्थर सा रहा दिल
यही तो जिया

जो भी पास था
उसे क्या दिया
राख की संगत कालिमा अभिषप्त

न सुख
न आनंद
मात्र एक तिक्त कटु गिलोय सा क्षण

चाहा था सुख
मिले निज को
और परिजन को
और जीया दुख
दिया दुख
निज को परिजन को,

जो फसल बोई थी
वही आज आयी
बीज एक साथ लिया
खेत खलिहान दिया

बार–बार बोया
घृणा
क्रोध अहंकार बीज
पाया जो आज है
भरा खलिहान है
नहीं कोई पास है
कहता है वणिज
इस बार यह फसल घर घर के पास है।

क्या सचमुच यही हुआ

होना था सचमुच यही
यही यहाँ होना था
मिला बहुत कुछ
दाता के द्वार से

हवा भी
पानी भी
खाने को बहुत कुछ
रहने को धरती
पाने को सुख

पर हुआ क्या
दुख की है चादर समेटे सारे जग को
सुरसा मुख
या कालिया नर्तन है
कालिदी रस हीन
घर घर दुर्योधन निवास है

कहता विवेक वृक्ष
बैठ इस छाया मे
देखा किसी ने कभी तृष्णा सागर को
उठती तरगे है
लहरे ही लहरे
विचारणा प्रवाह है

और यह रहता है
बहुत ही गहरा सागर है
अध नजर नहीं आता है
न सूर्य न चाद है
वहाँ वह ज्योतित है
वह डूबा गहन अधकार मे

वहाँ वह सुरक्षित है
वह सस्कार है
नहीं वह जड है
गति ही गति है
उफनता फेन है

शेष नाग वहीं है
वहीं लेटे श्री प्रभु है
हाँ वहीं शेष नाग जो निरतर विचरता है
उस महासागर मे
निरतर प्रवाह मे

कमल नाल बीच
बैठे श्री ब्रह्मा वह
साथ लिए सृष्टि बीज
अनत यात्रा के
गवाह मात्र एक वह
साक्षी समय है

पर होना यह नहीं था
विस्मृति सार बनी
विषय की लहरो पर इन्द्रिया तिरती थी
डूबता मन था
बुद्वि समर्पित
विवेक स्थगित सा
विषय सरोवर में डूबा मनुआ था

मात्र एक भटकाव
यहाँ से वहाँ तक
जो भी गलत था
दूसरा ही कारण था

निज को सुरक्षित रस
अहता कोटर मे
जो भी कारण बना
वही अहेरी था

सही यहाँ स्वय रहा
जो भी गलत था
पर की धरती पर
निज की स्वतत्रता
डूबी जडता मे
चिन्तय पराया
प्रतिमा जिह्वा थी
बड बोला मुखातिब था

यहाँ से वहाँ तक
रसना सार थी
दौडता रथ था
पर निन्दा पथ पर

यही तो सार था
बीते हुए कल का
क्या मिला अहेरी वह
यहाँ से वहाँ तक
रगता खूटियाँ पर
अदृश्य आकाश मे

स्थिरता कहीं नहीं
मात्र एक दौड थी
फिरकनी सा घूमता वह
साथ ले जिसको
वह देता गति और
गति ही गति
दौडता अनत था

यही तो हुआ
मिला अंधकार था
गहरे नीले सागर पर
दैन्य व्यथा लहरा पर

जो कुछ भी प्राप्त हुआ
संचित चंदनी हवाओ से
पाकर ताप कल्मषी
भटकता समीर था

सही गलत
गलत सही
सोच यहाँ बंद हुयी
जो भी गलत किया
दिया उचित वस्त्र था

न्यायोचित हर कृत्य हुआ
सत्य हुआ विस्मृत
दुख की जो चादर थी
और हुयी गहरी
पूछती हवा थी
घर–घर पर जाकर
क्या हुआ क्या हुआ
क्या सचमुच यही हुआ

मन वृन्दावन

माँ नदी थी तट था और था मैं
दिख रहा था दूर से
डूबता सूरज
पृथ्वी का मिलन आकाश से
तुमने कहा था कुछ नही
बस उठी थी वह भुजा
हाथ म जिसके था खड्ग
और पाव के नीचे दबा था वह असुर

सिह वाहिनी
उस सिह से भयभीत म
था सोचता
क्या असुर वध के लिए था जरूरी
सिह का होना ।

रूप तेरा
लपलपाती जीभ
हाथ म खप्पर
रक्त मे स्नान कर आ गई हो

उस क्षितिज के पार
तट कालिदी किनारे
दौडती रभाती फिर रहीं गाये

हाथ मे बशी लिए वह "कान्ह
माँ
ढूढता तुझको
जो सहारे कदब के नीचे थी खडी
आरक्त पद नख से धरती को टिकाए

रोम रोम स्पदित तन–मन
गूज रहा था नाद
कुकुमी आकाश
माग मानो भर गई हो
या उड चला आकाश
होलिका दहन की आग
उस शीतल आग मे
वस्त्र मानो जल गए हो

क्या रहा था शेष
जब कषायो से सजी यह देह
हो चुकी नि शेष
रगो से नहायी
थी सखी ललिता
कर रही थी नृत्य चिन्मय
शब्द   खो गए आधार
अर्थ   बस बेबस
वाक पार अपरा क
परा की कोख मे हो मौन।

मात्र सौरभ
जल उठा उपवन
आम्र मजरियो के अचानक जागने से
या खिल उठी चपा
या मालती
कुछ ना असमव
उस छोर पर
गध ने दे दिया सब कुछ

वाक ने चुपचाप लिया
और पी लिया
वह रस

दृष्टि का जो भेद था
रग का
रूप का
कुल गोत्र का
जाति का
नहीं था शेष

सखी ललिता थी वहा
और नहीं था कुछ
हवा चुप थी
जो साथ था
वह मौन था
और था वहा वह कुछ
जो था अरूप ।

उतरा शीश से
ले साथ अलकनदा
भगीरथ चाह को
हिमालय रौंदती
वह बह चली
अपनी डगर पर
कुछ मागती
कुछ छोडती
शिव धाम को
स्पर्शित–
जगत की कामना
और थी वह चाह
पार जाने की जगत से
था वहा पर जगत अपनी सार्थकता ले
वहाँ उतरी
वह वेग मानो सब बह गया हो।

त्रिनेत्र था वह
जो जगा
पर शात था
नहीं था पर वहाँ
वहा पर मात्र वह था
मात्र वह
जो वह एक था

माँ
सचमुच तुम वहा थीं
तुम वहाँ थीं

मुझमे समायी
दूर मुझसे
बात करती और हँसती
पास रहती
दूर जाती
मैं जो चला था
वह नहीं था वह कुछ और था।

और दिखा था दृश्य वह
माँ नहाती तुम
और सागर की उफनती उद्दाम लहर
वक्ष को छू रही थीं
स्तभित दिशाऐ
उठती थीं भुजाऐ
इस ओर से उस ओर तक
था दिखा वह पथ
जहाँ से सृष्टि जगती और सोती
माँ सिर्फ तुम वहा थी

तुमने दिखाया वह
आना और जाना
सखी ललिता का
आकाश से उतरी गई आकाश मे
आकाश
उसके सिवा था कुछ नहीं

जो बचा आकाश
जो रहा आकाश
आकाश मे आकाश था
आकाश से आकाश था
आकाश मे था मै
जो पात्र था
सखी ललिता भी जो हँस रही थी
दोष था मेरा
मेरे वसन का
मेरे गात का
कल्मष उसी को दे दिया था
वह नहायी और सजकर
उस गात से
जो कि मेरा था

और दिखा वह धाम
जय शब्द वीणा से हुआ गुजार
भ्रमर नाल पर
बैठे थे पितामह
और देखा वे तुम्हे करते नमन थे
तुम उन्हे
यह दृश्य मैं भूला नहीं था
हाँ अहम ही था कमलदल
जहा पितामह रच रहे सकल्प थे
ब्रह्म नाभि से उपजा वह अहम्
ले प्राण का आधार
ब्रह्माण्ड को पुलकित किए

था दे रहा था गान
मधुर गुजार
अनहद नाद
जो निरतर हो रही निस्सृत चिन्मयी वाद्य ¬
जो निरतर है
जो गति है
चाक ब्रह्मा का निरतर घूमता
उससे ही उपजा यह जगत
उसी मे लीन होती
घूमना था चाक को
गति ही तो ब्रह्मा है
गति ही प्राण है
जो खिल रहा था बीज
दो कोपल लिए
मन प्राण का
यह योग ही तो है जगत का बीज
और थीं माँ तुम
लिए गभ में उस बीज को
मुझको
मेरे इस गात को
सृष्टि मे निरतर भटकती इस देह को

कहा था यही उसने
जो हिमालय मे रहा
तज कर हिमालय की कपा को
साथ ले सती
या उमा को

कर रहा था वास वाघम्वर लपेटे
हाथ म डमरू
अपार्थिव नृत्य था वह
जव हुआ था
कापती धरती
पर वह चुप
अधरो पर समेटे हास धरती का
लिए कठ मे विप धरती का
वह कुछ कह गया था–
पार मेरे ही जाना है तुझे
है वहीं पर धाम माँ का
जो खडी है सामने तेरे
दूर नदी तट पर
दिखाती है जगत को जगत के पार को
फिर जगत जिसका हुआ है जन्म
होना लीन
उसकी भी नियति यह
वहाँ पर बस चिहाकाश है
वही पथ है
जो महेश्वर धाम है।

जा
सव भूल जा
दु ख और सुख क वीच का यह रास्ता
हाँ यह पीना है गरल तुझको
रहना चुप नहीं

पूरा आनन्दित
तभी तू जा सकेगा
इस घाट से उस घाट तक।

वहा पर है रखा वह पात्र
जिसका मुख ढका
स्वर्ण से
ले उठा
दो पग
पर ध्यान रख
हिरण्यमय यह पात्र
जिसके लिए जानकर भी "राम
चल पडे थे ले धनुष स्वर्ण मृग सधान करने
जानती सीता
सब कुछ
कर गयीं वे पार
रेखा खींचकर जो गए लक्ष्मण
तभी तो अहम् का स्तूप
रावण छल गया।

स्वर्ण का यह पात्र
छलता ही रहा है
तथागत को भी मिला था
इसका आमत्रण
पर चले थे वे यह सोचकर
वैभव राजसी दे न पाएगा

कभी सताप
छल या छलना इस जगत की
भरमा रही सबको सदा से
तभी तो महावीर न
जाना दे निर्मम यातना इस देह को
पा सक वह
जो कि उनका है
जो वे स्वय हैं
मुक्ति का यह पर्व
मुक्ति उससे जो भरमा रहा है जीवन को
कषाय का यह वलय
अध्यवसाय को घेरे मे लिए
सवर साधना से
कट सकेगा
सार पाया श्रमण ने वैराग्य मे

यह जो वेला है
यह विद्या और अविद्या की सधि रेखा है
मधु यामिनी
मधु कलप लो खुल गया हे
मधु यह जो सार है इस जगत का
क्या जगत यह व्यर्थ हे
नि स्सार है
माँ
वैठी शेष शेया पर पर प्रभु पद दयातीं
जा लक्ष्मी रूपा हैं
क्या असगत
मात्र कल्पना की चित्रशाला है।

हॉ मा
लक्ष्मी रूपा
खा गए नारद जिसके मोह में
माग बैठे हरिरूप स्वय "हरि से
और फिर जब वरमाला प्रभु को
कर समर्पित लक्ष्मी रूपा हँस पडी
ता हो कुपित
प्रभु से ले शाप
स्वण के इस पात्र से मोहित
पद रज छोड
विभ्रम का ले दुपटटा
तमस की गहरी अमावस रात म गए उ—

पीताम्बर पट
दे सहारा बॉह का श्री राधा को
चिन्मयी मॉ प्रकृति को
हो रहा नित्य नर्तन
चिर स्पदन
मात्र गति है
मात्र गति
अहर्निश रास
अधर कोमल
सिहरता गात
स्पदन ही सजगता
और बेसुध तन
लौटता लहरो से आता पवन
तट के सहारे छोडता
हॉ हॉ यही तो था   वहॉ

भागवत का गीत
प्रेमिल
 चैतन्य का वह चिन्मय नृत्य
घुघरू बाधकर नाची वह श्यामल रग मे
तोडकर वह पात्र का ढक्कन
जो रखा था
स्वर्ण के घट पर
सिहासन की परिधि को लाघकर
"रैदास भक्ता वह
कह रही थी भाषा उस "दरद की

सूर की गोपी अजानी
बरसते थे नेत्र जिसके देखकर काली घटाऐ
श्यामल रग को
"कबीरा का वह बैसुध मन
जो खुमारी मे रहा था डूबता
जागता
सजगता मे परा को बैखरी पर बाधता
हँसता हँसता
अपनी फकीरी मे रहा खुद को लगाता।

हाँ वह गोरख
जो चला था योग की धूनी लगाए
कह गया था
साथ उसके वह रहेगा जो जगा है
जो जगा है सदा निशदिन
वही रहता साथ उसके
जो सदा ही जगा रहता।

यह घडी भी
माँ तुम्हारे सहज स्नेहिल स्पर्श की
कि मे जगा था
देखता
तुमको नदी को तटको और सब का
माँ
सब छूटता
यह गात
यह जात
यह देह का आधार

वह जो बीज था
अब खुल गया था
उठ रहा था ज्वार
कभी बाहर का आमत्रण
कभी भीतर की अकुला हट
माँ यह सब दिखाया
स्पर्श ने
जो रह रह कर उठा था
जब जगा था
माँ पहली बार धरती पर माँ की कोख मे
वह पुलक
वह सिहरता गात
जब स्पश पाया देह =
तब हुआ स्पदित यह तन यह मन
वही सिहरन
जो उठी थी नाभि से
हो गई थी व्याप्त नस नस मे
हा माँ वही
वही तो था
वही लौट आया शिशु मेरा जो खो गया था
जगत की
इस ज्ञान की
इस सूचना की
इस शास्त्र की
प्रचारित कर्दमी जड बेला म
जहा प्रस्तर खड पूजित
शब्द अर्चित

चिन्मय अपमानित
स्वण घट की प्रतीक्षा मे
खडे सब
इस देह मे मत्र मानव से
शास्त्र को चादर सा लपेटे
बैखरी धुन पर नचते
नट विद्या ही सीखे
दे रहे जग को प्रलोभन
जगत की मिथ्यात्व की घोषणा का पाठ
दोहराते
स्वय भीतर जग की दासता मे लिप्त
स्वर्ण घट की कामना मे
रह वूढ
वूढे ही थे जन्मे
इस चिन्मयी वृन्दावनी रस भूमि पर
जिनका शेशव जन्म से ही खो गया था

हाँ जगा माँ वह
गोरख ने कहा था
आधी रात मे है एक बालक बोलता
माँ वह बालक
वह जगा था
खाकर सबकुछ
कुल जाति धारण जो किया था
मात्र बालक
वह बटुक भरव
माँ वह भरा
काल भेरव

जो ममेतर था बना कल तलक था
वह विदा ले
कब गया

कह रहा था वह पखेरू
बैठा वृक्ष पर
फल कुतरता
और था जो देखता था
वह अचानक ही बचा था
चखते चखते पख उसके जो जले थे
वह अचानक कह गया था
वह चखना भूलकर के अब
बस दखता है
देखता है जो वही ता है बटुक
बटुक भैरव
वह मिला था
और थी ललिता
जो सदा से साथ थी
उतरी आकाश मे आकाश मे ही मिली थी देह मे

कह रही थी
देख ले--
वृन्दावनी चिन्मयी धरा पर
ले हाथ मे वशी
न ले
चाह तेरी
बाध ले घुघरू
जगत यह पाप है अब नहीं

लीला भूमि है यह कान्ह की
जो बटुक है
वही तो मुक्त है
स्वर्ण घट की प्रतीक्षा है नहीं अब
सर्प और स्वर्ण का नही है भेद
यह बटुक हसता हसाता
अभी तो जन्मा यही है
हा मा मै खडा था नदी तट पर साथ तेरे

बटुक ही तो सार है
सार्थकता यात्रा की जो हुयी है ज्ञात
ऋषियो से मुनियो और गुरूओ से
पर ही न जाने क्यो
बटुक को छोडकर
वृद्ध को ही साथ रखते हैं सदा।

हा तभी तो भूमि वृन्दावन जहा
भक्ति नवयौवना के पुत्र
थककर क्लात थे जो गिरे
और नारद विस्मय का छोड पीताम्बर
गए थे पूछने
प्रश्न पितामह से–
भागवत का बीज हो यह
या कथा श्री राम की
जहा मिलना मारुति का श्रीराम से
पाना खोई सीता शाति श्रीराम की
विवेक के जागरण का यह गीत है
प्राप्त होता

जा मिला इस जीव का जग म
उसकी धारणा स
जा स्वधम है
सामर्थ्य का सदुपयाग ही ता धम है
जा खोलता है द्वार
लेकर साथ विवकी मन
उस धाम का
चिर चिन्मय लीला भूमि का।

तव चिदाकाश म
उडता वह पखरू
जो चख रहा ॐ
पखा का जलाकर
पाकर अपनापन कि दव अब देखता है
उड चला है
चिदाकाश म
उसके पख उजले शुभ ज्योतित
विवेक और वैराग्य के
जा छूटता था
और था जिसे जाना
वह अब जा चुका ह
था जिस आना
वह अब आ चुका ह।

जो शिशु जन्मा
वह कान्ह हो या यीशु
वह भी बटुक था
उसका ही आना

आगमन का गीत है
जो जगा है वह वटुक है
जो वटुक है वह जगा है

है नही यहा पर धूल
पारस और अमृत की
नही है स्वर्ग का सुख
नहीं है भय की चादर
नहीं घृणा की बहती नदी है
हिमालय से निकली भगीरथी का जन्म है यह
जो मिली है
शिव" की जटा पर आज आकर
चद्रमा है खिला
कठ मे लपेटे सर्प विषधर
बाघम्बर लपेटे शात है वह
वह शिवम है
कल्याण की इच्छा सजोए
नाद डमरू मे भाषा छन्द लेकर
नृत्य की भगिमा हो
या ज्ञान वेदा का
आगम निगम की सधि रेखा
तत्र की आधार भूमि
चिर कैलाश की चिर भाव भूमि
यहीं तो है
यही पर जन्मे है "गणेश
जो स्वय पशु का शीष रखकर
बुद्धि का आगार है वे

दे रहे आधार सबका
नाभि अपनी करते उजागर
मोदक भोग लेते
क्या नहीं असहज रूप उनका।

हा शीश ही तो सार दुख का है
हो गया निरतर विकास इसका
हृदय तक अब चेतना का द्वार कुठित
जा नहीं सकती
वह यह दासत्व खोकर
जो कि पाया
सभ्यता के विस्तार से उसने यहा पर
शक्ति मन की हो या प्राण की
दोनो एक हैं
वास उसका नाभि
आना है यहा
जो कि अब हो गयी है कैद घर मस्तिष्क मे
जहा से जाता पथ जगत की लालसा का
कह गया था वह–
लोभ मत कर
सपत्ति यह किसी की है नही
त्याग से ही भाग का पथ है
और वास ईशा का जगत मे
है जगत से वह परे भी है।

लोभ का यह पथ
कषायो का बना है सिलसिला

तथागत की
विषभरी तृष्णा की नीली धार है यह
छोड़ जिसको वे गये
पा गए महावीर
पथ वैराग्य का ले साथ

यह उपजती शीश पर
जितन कश हो उतनी ही तृष्णा जान
करते लुचन केश का
और वे "मुडक के अनुयायी
अग्नि को जगाते शीश पर
केश अर्पित कर
भगवा पहन जग मे चल पड़े।

कहते गणपति
पशुता तुम्हारी शीश पर बसती
भले ही तुम मनुज हो
मनुज का वास तो नीचे हृदय मे है
कठ जहा शिव ने
गरल को है रखा
इसी द्वार के नीचे रहती तितिक्षा है
वहाँ खुला आकाश है
भाषा वैखरी से मध्यमा
मध्यमा से होकर पश्यती
ढूढती है पथ
परा म डूबना
जहा जगता "सोम
वही मधुमय सोम

मन और प्राण का आधार बना
अन्न से उपजा
पर नहीं वह अन्न है
खाता आपका
दे मन-प्राण का आधार।

यह वह भूमि है
जो बनी वृन्दावन
जहाँ तमसा के पार कालिंदी
जहाँ हैं खड़े श्री कान्ह
ले माधुरी
जो बस प्रेम है
जिसको पाकर कह उठा था जायसी
इसके सिवा यह देह सचमुच व्यर्थ है।

यही है वह धाम
जहाँ है पथ मुक्ति का
यही है देश हंसों का
जो उड़ते हैं चिदाकाश में
यही है सार्थकता
मानव देह की
होना बस मनुज
कर दूर सारे आवरण जो ढके हैं
चेतना को लिए इस स्वर्ण घट पर
हाँ उठा ढक्कन
अब होगे [illegible] यहाँ पर
चेतना निस्पृह सजग वह

नाम उसका दे सको तो दे ही देना
नाम ही तो है
मनुज की अकाक्षाओ का द्वार
इसके सिवा वह जा नहीं सकता
कभी निज के पार
अर्हत भूमि का आस्वाद है यह
उतरना छिलके काद के
जो मिला है अत मे वह क्या
क्या अस्तित्व है सहज
भाषा होती मूर्त जहा हो व्यक्त करना
सज्ञा और विशेषण पर
पर जहा मात्र लहर हो
और लहरो से परे जो गर्भ है
जहाँ नही है कुछ
जो हो सके रूपायित कहीं पर
वहाँ तो बस दिगम्बर है।

खोज उसकी क्यों करो
सधान सज्ञा का
पर वह है
वहाँ तो मात्र वशी नाद है
जो गति है
जन्म देती है   और रखती ओर कर देती विदा
यह क्या ?
है नहीं माया
यह लीला भूमि है कान्ह की
जो है योग निद्रा मे

महासागर नीली लहरो बीच
शैया शेष नाग
हा है वहा पर मा
लीला सहचरी निरतर जागृत चिन्मय
उसका लास्य ही तो है सौंदर्य इस धरा पर
उसकी ही हँसी
जो है मुदित नीले आकाश मे
यह जल थल अग्नि पावक सब वही है
है वही
जो मात्र गति है
और था मैं मैं मनुज बटुक भैरव
था छूटता था ज्ञान
प्रौढ मन की जो सूचना थी
जग ग्न था वह शिशु
या जागरण का गीत
था उस पार
घाटी पर दिखता था जगत "जोगी महल सा
जहा है मात्र खडहर
अतीत के जड सवाहक
भविष्योन्मुखी डूबते मस्तूल के वे खड
जहा पर असुरक्षित है मनुज
जो मात्र पशु है
और उसका होना पशु सनातन कर्म है
जो पशु है वही होगा
यहा पशु आहार यही अभ्यारण्य है।

इस पार था जन्मा
उस अधमानव शीश पशु पर देहमानव की

गणपति सांनिध्य ही
वह शिशु बटुक भैरव
जागरण की
नव मनुज की
नव सूर्य के आगमन की सूचना थी।

पौ फटी थी
बरसते बादलो के बीच उस कालिमा मे
हल्की सी झाकती
खिले गुलाब सी वह लालिना थी
उसमे था आगत का सदेश
जो जगा है आज
थिर हो नहीं सकता
छाया तेरी कालिमा से है बनी
सग तेरे ही चली है जन्म से ही
साथ तेरे यह रहेगी
होना तुझको है सहज सजगता ही सारजीवन है।

हा नदी तट पर लिखा था यह
सुवासित कमल दल बीज
मेरे और तेरे बीच
बहता प्राण था
छन्द गायत्री वह सविता मा
ले "सोम का आधार
मन और प्राण होकर एक
मुझमे लीन मुझसे मुझको छीन
नवशिशु का हुआ था जन्म
प्रणव सहचर

नहीं था शून्य
नहीं था दैन्य
तट कालिंदी वृन्दावन रज
खड़ा था वह
बटुक
बना वंशी
सखी ललिता साथ
कहाँ थी वह
कहा था वह
दोनो एक
क्षण वह एक
उन्की रमाती गाय धेनु भी अब चुप
कदम्ब की महकती गंध

मा तेरे कान्ह के अधरो पर
रखी वंशी
प्रणव सहचर
मधुरिमा मे रहा था जग
अरुणाई ही अरुणाई
दिशाएँ थीं दिगम्बर सी
कहतीं रूप ही तेरा तुझी को कर अलग
रहता अलग
यही छाया है जो तमस है – तू नहीं वह।

——— 00 ———